स्वयं का आविष्कार

भीतर ठीक-ठीक देखना हो तो एक ही अंजन है—निरंजन ही अंजन है

खुले नयन से सपने देखो, बंद नयन से अपने।
अपने तो रहते हैं भीतर, बाहर रहते सपने।
नाम-रूप की भीड़ जगत में, भीतर एक निरंजन।
सुरति चाहिए अंतर्दृग को, बाहर दृग को अंजन।
देखे को अनदेखा कर रे, अनदेखे को देखा।
क्षर लिख-लिख तू रहा निरक्षर, अक्षर सदा अलेखा।
समझो—
खुले नयन से सपने देखो, बंद नयन से अपने।
अपने तो रहते हैं भीतर, बाहर रहते सपने।

जो भी बाहर देखा है, सपना है। अपने को देखना है—तो भीतर! जो भी बाहर देखा, उसे अगर पाना चाहा तो बड़ी दौड़ दौड़नी पड़ेगी, फिर भी मिलता कहां? दौड़ पूरी हो जाती है—हाथ कुछ भी नहीं आता। संसार का स्वभाव समझो। दिखता है सब—मिलता कुछ भी नहीं। लगता है यह रहा, जरा ही चलने की बात है, थोड़ा प्रयास और! जैसे क्षितिज छूता है, लगता है कुछ मील का फासला है दौड़ जाएंगे, पहुंच जाएंगे,

आकाश और जमीन जहां मिलते हैं वह जगह खोज लेंगे; फिर वहां से आकाश में चढ़ जाएंगे, लगा लेंगे सीढ़ी, बना लेंगे अपना बेबिलोन, स्वर्ग की सीढ़ी लगा लेंगे—मगर कभी वह जगह मिलती नहीं जहां आकाश पृथ्वी से मिलता है; बस दिखता है कि मिलता है। आभास! जिसको हिंदुओं ने माया कहा है। प्रतीत तो बिलकुल होता है कि यह दिखाई पड़ रहा है आकाश मिलता हुआ; होगा दस मील, पंद्रह मील, बीस मील, थोड़ी यात्रा है—लेकिन तुम जितने क्षितिज की तरफ जाते हो, उतना ही क्षितिज तुमसे दूर चलता चला जाता है। दिखता सदा मिला मिला, मिलता कभी भी नहीं।

खुले नयन से सपने देखो,
बंद नयन से अपने।
अपने तो रहते हैं भीतर, बाहर रहते सपने।

बाहर लगता है मिल जाएगा, और मिलता कभी नहीं। और भीतर लगता है कैसे मिलेगा? और मिला ही हुआ है। ठीक संसार से विपरीत अवस्था में भीतर की। संसार देखना हो तो आंखें बाहर खोलो; सत्य देखना हो तो आंखें भीतर खोलो। बाहर से आंख बंद करने का कुल इतना ही अर्थ है कि भीतर देखो।

नाम-रूप की भीड़ जगत में,
भीतर एक निरंजन।
सुरति चाहिए अंतर्दृग को,
बाहर दृग को अंजन।

बाहर ठीक-ठीक देखना हो तो आंख में हम काजल आंजते, अंजन लगाते। बुढ़िया का काजल लगा लेते हैं न, बाहर ठीक-ठीक देखना हो तो। भीतर देखना हो तो भी बूढ़ों ने एक काजल ईजाद किया है। उसको कहते हैं; सुरति, स्मृति, जागृति, समाधि!

नाम-रूप की भीड़ जगत में,
भीतर एक निरंजन।
सुरति चाहिए अंतर्दृग को,
बाहर दृग को अंजन।

बाहर ठीक देखना हो, आंज लो आंख, ठीक-ठीक दिखाई पड़ेगा। भीतर ठीक-ठीक लगे देखना हो तो एक ही अंजन है—निरंजन ही अंजन है! वहां तो एक ही बात स्मरण करने जैसी है, वहां तो एक ही प्रश्न जगाने जैसा है कि मैं कौन हूं? वहां तो एक ही बोध उठने लगे सब तरफ से कि मैं कौन हूं? एक ही प्रश्न गूंजने लगे प्राणों में कि मैं कौन हूं? धीरे-धीरे इसी प्रश्न की चोट पड़ते-पड़ते भीतर के द्वार खुल जाते हैं। यह चोट तो ऐसी है जैसे कोई हथौड़ी मारता हो : मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? उत्तर मत देना, क्योंकि उत्तर बाहर से आएगा। तुमने जल्दी से पूछा कि मैं कौन हूं? और कहा, अहं ब्रह्मास्मि—तो आ गया उपनिषद् बीच में। तुम उत्तर मत देना, तुम तो सिर्फ पूछते ही चले जाना। एक ऐसी घड़ी आएगी, प्रश्न भी गिर जाएगा। और जहां प्रश्न गिर जाता है...जहां प्रश्न गिर जाता है, वहीं उत्तर है। फिर तुम ऐसा कहते नहीं कि अहं ब्रह्मास्मि—ऐसा तुम जानते हो; ऐसा तुम अनुभव करते हो। शब्द नहीं बनते, निःशब्द में प्रतीति होती है।

देखे को अनदेखा कर रे, अनेदेखे को देखा।

अभी तो तुम जिसे देख रहे हो, उसी में उलझे हो। और जो दिखाई पड़ रहा है, वही संसार है। दृश्य संसार है। और जो देख रहा है, जो द्रष्टा है, वह तो अदृश्य है, वह तो बिलकुल छिपा है।

देखे को अनेदेखा कर रे, अनेदेखे को देखा।

क्षर लिख-लिख तू रहा निरक्षर...!

लिखने-पढ़ने से कुछ भी न होगा। हम लिखते तो हैं और जो लिखते हैं उसको कहते हैं : अक्षर। कभी तुमने सोचा, अक्षर का मतलब होता है जो मिटाया न जा सके! लिखते तो क्षर हो, कहते हो अक्षर। कैसा धोखा देते हो, किसको धोखा देते हो? तुमने जो भी लिखा है, सब मिट जाएगा। लिखा हुआ सब मिट जाता है। शास्त्र लिखो, खो जाएंगे; पत्थरों पर नाम खोदो, रेत हो जाएंगे। यहां तुम कुछ भी लिखो, नदी के तट पर रेत में लिखे गए हस्ताक्षर जैसा है; हवा का झोंका आया और खो जाएगा। शायद इतना भी नहीं है, पानी पर लिखे जैसा है; तुम लिख भी नहीं पाते और मिटना शुरू हो जाता है।

क्षर लिख-लिख तू रहा निरक्षर...!

अपढ़! अज्ञानी! मूढ़! क्षर को लिख रहा है और भरोसा कर रहा है अक्षर का? समय में लिख रहा है

सूफियों का जिक्र समझने जैसा है। कुछ तुममें से प्रयोग करना चाहें तो करें। सूफियों के जिक्र का आधार है : अल्लाह! शब्द बड़ा प्यारा है। शब्द में बड़ा रस है। वह तो हम हिंदू, मुसलमान, जैन, ईसाई में बांट कर दुनिया को देखते हैं, इसलिए बड़ी रसीली बातों से वंचित रह जाते हैं

भरोसा कर रहा है अक्षर का? समय में लिख रहा है और शाश्वत की आकांक्षा कर रहा है? क्षुद्र को पकड़ रहा है और विराट की अभिलाषा बांधे है?

क्षर लिख-लिख तू रहा निरक्षर,

अक्षर सदा अलेखा।

और तेरी इस लिखावट में ही, यह क्षर में उलझे होने में ही, अक्षर नहीं दिखाई पड़ता। अक्षर तेरे भीतर है। थोड़ी देर लिख मत, थोड़ी देर पढ़ मत, थोड़ी देर कुछ कर मत। थोड़ी देर दृश्य को विदा कर। थोड़ी देर अपने में भीतर आंख खोल—सुरति में।

सूफियों के पास ठीक शब्द है सुरति के लिए, वे कहते हैं—जिक्र। जिक्र का भी वही अर्थ होता है, जो सुरति का। जिक्र का अर्थ होता है : स्मरण, याददाश्त, कि चलो बैठें, प्रभु का जिक्र करें, उसकी याद करें! जिसको हिंदू नाम-स्मरण कहते हैं। नाम-स्मरण का मतलब यह नहीं होता कि बैठकर राम-राम, राम-राम करते रहे। अगर राम-राम करने से शुरू भी होता है राम का स्मरण, तो भी समाप्त नहीं होता।

सूफियों का जिक्र समझने जैसा है। कुछ तुममें से प्रयोग करना चाहें तो करें। सूफियों के जिक्र का आधार है : अल्लाह! शब्द बड़ा प्यारा है। शब्द में बड़ा रस है। वह तो हम हिंदू, मुसलमान, जैन, ईसाई में बांट कर दुनिया को देखते हैं, इसलिए बड़ी रसीली बातों से वंचित रह जाते हैं। मैंने बहुत-से शब्दों पर प्रयोग किया, 'अल्लाह' जैसा प्यारा शब्द नहीं है। 'राम' में वह मजा नहीं है। तुम जब गुनगुनाओगे, तब पता चलेगा। जो गुनगुनाहट अल्लाह में पैदा होती है और जो मस्ती अल्लाह में पैदा होती है—वह किसी और शब्द में नहीं होती। चेष्टा करके देखना।

कभी रात के अंधेरे में द्वार-दरवाजे बंद करके दीया बुझा कर बैठ जाना, ताकि बाहर कुछ दिखाई ही न पड़े, अंधेरा कर लेना। नहीं तो तुम्हारी आदत तो पुरानी है, कुछ न कुछ देखते रहोगे। फिर भीतर बैठ कर पहला कदम है जिक्र का : 'अल्लाह-अल्लाह' कहना शुरू करना। जोर से कहना। ओंठ का उपयोग करना। एक पांच-सात मिनट तक 'अल्लाह-अल्लाह' जोर से कहना। पांच-सात मिनट में तुम्हारे भीतर रसधार बहनी शुरू होगी, तब ओंठ बंद कर लेना। दूसरा कदम : अब सिर्फ भीतर जीभ से कहना, 'अल्लाह - अल्लाह - अल्लाह'! पांच-सात मिनट जीभ का उपयोग करना, तब भीतर ध्वनि होने लगेगी; तब तुम जीभ को भी छोड़ देना, अब बिना जीभ के भीतर, प्रतिध्वनि होने लगेगी। तब भीतर भी बोलना बंद कर देना, 'अल्लाह - अल्लाह - अल्लाह' करना। पांच-सात मिनट...तब तुम्हारे भीतर और भी गहराई में ध्वनि होने लगेगी, 'अल्लाह-अल्लाह' वहां भी छोड़ देना। अब तो 'अल्लाह' शब्द नहीं रहेगा, लेकिन 'अल्लाह' शब्द के निरंतर स्मरण से जो प्रतिध्वनि गूंजी, वह गूंज रह जाएगी, तरंगें रह जाएंगी। जैसे वीणा बजते-बजते अचानक बंद हो गई, तो थोड़ी देर वीणा तो बंद हो जाती है, लेकिन श्रोता गदगद रहता है, गूंज गूंजती रहती है; ध्वनि धीरे-धीरे-धीरे शून्य में खोती है।

तो तुमने अगर पंद्रह-बीस मिनट अल्लाह का स्मरण किया, पहले ओठों से, फिर जीभ से, फिर बिना जीभ के, तो तुम उस जगह आ जाओगे, जहां दो-चार-पांच मिनट के लिए 'अल्लाह' की गूंज गूंजती रहेगी। तुम्हारे भीतर जैसे रोआं-रोआं 'अल्लाह' करेगा। तुम उसे सुनते रहना। धीरे-धीरे वह गूंज भी खो जाएगी। और तब जो शेष रह

संसार देखना हो तो आंखें बाहर खोलो; सत्य देखना हो तो आंखें भीतर खोलो। बाहर से आंख बंद करने का कुल इतना ही अर्थ है कि भीतर देखो

वह गूंज भी खो जाएगी। और तब जो शेष रह जाता है, वही अल्लाह है! तब जो शेष रह जाता है, वही राम है। शब्द भी नहीं बचता, शब्द की अनुगूंज भी नहीं बचती—एक महाशून्य रहा जाता है। सुरति!

'राम' शब्द का उपयोग करो, उससे भी हो जाएगा। 'ओम' शब्द का उपयोग करो, उससे भी हो जाएगा। लेकिन 'अल्लाह' निश्चित ही बहुत रसपूर्ण है। और तुम सूफियों को जैसी मस्ती में देखोगे, इस जमीन पर तुम किसी को वैसी मस्ती में न देखोगे। जैसे सूफियों की आंख में तुम शराब देखोगे, वैसी किसी की आंख में न देखोगे। हिंदू संन्यासी ओंकार का पाठ करता रहता है, लेकिन उसकी आंख में नशा नहीं होता, मस्ती नहीं होती।

'अल्लाह' शब्द तो अंगूर जैसा है, उसे अगर ठीक से निचोड़ा तो तुम बड़े चकित हो जाओगे। तुम चलने लगोगे नाचते हुए। तुम्हारे जीवन में एक गुनगुनाहट आ जाएगी।

सुरति, जिक्र, नाम-स्मरण-नाम कुछ भी हों।
नाम-रूप की भीड़ जगत में,
भीतर एक निरंजन।
सुरति चाहिए अंतर्दृग को,
बाहर दृग को अंजन।
देखे को अनदेखा कर रे,
अनदेखे को देखा।
क्षर लिख-लिख तू रहा निरक्षर,
अक्षर सदा अलेखा।

और वह जो भीतर छिपा है, वह हम लेकर ही आए हैं। उसे कुछ पैदा नहीं करना—उघाड़ना है, अविष्कार करना है। ज्यादा तो ठीक होगा कहना : पुनर्आविष्कार करना है? रिडिस्कवरी! भीतर रखे-रखे हम भूल ही गए हैं, हमारा क्या है? अपना क्या है? सपने में खो गए हैं, अपना भूल गए हैं। सपने को थोड़ा विदा करो, अपने को थोड़ा देखो! अनदेखा दिखेगा! अलेखा दिखेगा! अक्षर उठेगा!

—ओशो

अष्टावक्र महागीता भाग—3
प्रवचन नं. 30 से संकलित
(पूरा प्रवचन टेप पर उपलब्ध है)